INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD)
© 2026 IJNRD | Volume 11, Issue 8, August 2026 | ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

जागरण से राष्ट्र तक: उन्नीसवीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन और भारतीय राष्ट्रवाद की नींव

From Awakening to Nation: Socio-Religious Reform Movements of the Nineteenth Century and the Foundations of Indian Nationalism

जयंत कुमार कन्नौजिया
शोधार्थी (इतिहास विभाग)
कुमारी मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर,(उ०प्र०)
डॉ. आशा रानी
प्रोफेसर(इतिहास विभाग)
कुमारी मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर,(उ०प्र०)
[jayantkd2621@gmail.com]

ABSTRACT / सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी का भारत सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक उथल-पुथल के दौर से गुज़र रहा था। सती प्रथा, बाल-विवाह, जाति की संकीर्णता, अस्पृश्यता और पर्दा-प्रथा जैसी कुरीतियों ने समाज को जकड़ रखा था, और दूसरी ओर पाश्चात्य शिक्षा, मुद्रण, यातायात तथा वैज्ञानिक प्रगति ने एक नए शिक्षित वर्ग को जन्म दिया जो अपनी परम्परा और अपनी दुर्बलताओं, दोनों को नए सिरे से देख रहा था। यह शोध-आलेख उस प्रक्रिया का अध्ययन करता है जिसे सामान्यतः भारतीय नवजागरण कहा जाता है, और यह दिखाने का प्रयास करता है कि उन्नीसवीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रवाद के उदय की पृष्ठभूमि किस प्रकार तैयार की। आलेख में नवजागरण के छह प्रमुख कारणों की पहचान की गई है, तत्पश्चात् बंगाल के ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, तरुण बंगाल, विद्यासागर के प्रयास, पश्चिम भारत के प्रार्थना समाज और सत्यशोधक समाज, आर्य समाज, दक्षिण भारत के वेद समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी तथा मुस्लिम और पारसी सुधार प्रयासों का क्रमवार विश्लेषण किया गया है। निष्कर्ष यह है कि ये आन्दोलन परस्पर भिन्न होते हुए भी एक साझा परिणाम तक पहुँचे: उन्होंने भारतीयों को अपने अतीत के प्रति आत्मविश्वास दिया और उन्हें एकता के सूत्र में बाँधा, जिसकी परिणति आगे चलकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के रूप में हुई।

Nineteenth-century India passed through a period of social, religious and intellectual upheaval. Practices such as sati, child marriage, caste exclusion, untouchability and seclusion held society in place, while Western education, printing, new means of transport and scientific advance produced an educated class that began to examine both its own tradition and its own weaknesses afresh. This article studies the process commonly called the Indian renaissance and argues that the socio-religious reform movements of the nineteenth century prepared the ground for the rise of nationalism. Six principal causes of the awakening are identified, after which the article examines in sequence the Brahmo Samaj of Bengal, the Ramakrishna Mission, Young Bengal, the work of Vidyasagar, the Prarthana Samaj and Satyashodhak Samaj in western India, the Arya Samaj, the Veda Samaj of the south, the Theosophical Society, and reform efforts among Muslims and Parsis. The conclusion is that these movements, however different from one another, arrived at a shared outcome: they gave Indians confidence in their own past and bound them into a sense of unity that issued, in time, in the national freedom movement.

KEY WORDS / बीज-शब्द

भारतीय नवजागरण, सामाजिक-धार्मिक सुधार, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज, राष्ट्रवाद, उन्नीसवीं शताब्दी

Indian renaissance; socio-religious reform; Brahmo Samaj; Arya Samaj; Ramakrishna Mission; Prarthana Samaj; nationalism; nineteenth century

1. परिचय

उन्नीसवीं सदी का भारत बौद्धिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल के दौर से गुज़र रहा था। यह वह समय था जब ब्रिटिश शासन के दौरान शुरू की गई सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक प्रणाली ने भारतीय समाज के आधारभूत ढाँचे में बड़ा परिवर्तन ला दिया।[1] यह परिवर्तन पाश्चात्य शिक्षा के प्रारम्भ से भी जुड़ा हुआ है, जिसने सामाजिक और सांस्कृतिक नवजागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीयों को इस बात का अहसास हो चुका था कि भारतीय सामाजिक ढाँचे और सांस्कृतिक दुर्बलताओं के कारण ही विदेशियों ने उन्हें पराधीन बना लिया है। अतः इन बुद्धिजीवियों ने अपनी शक्ति और कमज़ोरी दोनों को पहचाना और इन कमज़ोरियों को दूर करने का उपाय खोजने लगे। उन्होंने परम्परागत भारतीय विचारों और संस्थाओं में अपनी आस्था व्यक्त की। किन्तु दूसरी ओर वे यह भी मानने लगे थे कि भारतीय समाज में फिर से प्राण फूँकने के लिए कुछ पाश्चिमी विचारों को आत्मसात करना पड़ेगा। इसी कारण इन लोगों ने पाश्चात्य लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, समानता एवं न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों के साथ-साथ वैज्ञानिक और मानवतावादी मूल्यों को भी अपनाया। इन मूल्यों से प्रभावित होकर भारतीय समाज की तत्कालीन रूढ़ियों को समाप्त करने का प्रयास किया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी नवजागरण का काल था। इस समय भारत का सामाजिक और धार्मिक जीवन क्रूर रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं के दलदल में फँस गया था। सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह, बाल-हत्या, जात-पाँत की संकीर्णता, छुआछूत, समुद्र-यात्रा-निषेध, अन्धविश्वास और पर्दा प्रथा जैसी अनेक बुरी प्रथाएँ समाज में घुस आई थीं।

भारतीय जीवन में धर्म और समाज का गहरा सम्बन्ध है, और धार्मिक विचारों का समाज पर अनिवार्य प्रभाव पड़ता है। इसीलिए जब उन्नीसवीं शताब्दी में धार्मिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक प्रगति हुई, तो उसने भारतीय जन-जीवन को भी प्रभावित किया, और नवजागरण ने भारत में नवचेतना का संचार किया।[2]

भारतीयों ने यह अनुभव किया कि सामाजिक और धार्मिक सुधार आधुनिक ढंग से करना तथा राष्ट्रीय एकता और एकजुटता को विकसित करना आवश्यक है।[3] अनेक सुधारक उत्पन्न हुए और अनेक संस्थाएँ स्थापित हुईं, जिन्होंने समाज में प्रचलित बुराइयों को दूर करने के लिए समाज सुधार आन्दोलन चलाया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि देश एक गहरी और लम्बी निद्रा के बाद जागा है।

यह इस नवजागरण या पुनरुत्थानवाद के निश्चय ही हिन्दू अस्मिता को स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुआ,[4] जिसकी परिणति राष्ट्रीय चेतना के विकास के रूप में हुई। उन्नीसवीं सदी के सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।[5]

2. शोध-प्रविधि तथा अध्ययन की परिधि

यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित एक विश्लेषणात्मक समीक्षा है। इसमें आधुनिक भारत के प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों, आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन सम्बन्धी प्रकाशित सामग्री, और स्वामी दयानन्द सरस्वती के *सत्यार्थ प्रकाश* जैसे मूल ग्रन्थ का उपयोग किया गया है। अध्ययन की कालावधि लगभग 1815 से 1900 तक है, अर्थात् आत्मीय सभा की स्थापना से लेकर उन्नीसवीं सदी के अन्त तक।

अध्ययन की तीन सीमाएँ स्पष्ट रूप से अंकित की जानी चाहिए। पहली, यह आलेख अभिलेखीय शोध पर आधारित नहीं है; इसके निष्कर्ष प्रकाशित इतिहास-लेखन की व्याख्या पर टिके हैं। दूसरी, सुधार आन्दोलनों के जन-प्रभाव का, अर्थात् इन संस्थाओं ने वास्तविक सामाजिक आचरण को कितना बदला, कोई परिमाणात्मक आकलन यहाँ प्रस्तुत नहीं किया गया है। तीसरी, इस आलेख का ध्यान मुख्यतः उन आन्दोलनों पर है जिन्हें इतिहास-लेखन में प्रमुखता मिली है; अनेक क्षेत्रीय और जाति-आधारित सुधार प्रयास, जिनका स्वतन्त्र महत्त्व है, यहाँ विस्तार से नहीं आ सके।

3. भारतीय नवजागरण के प्रमुख कारण

3.1 हिन्दू धर्म एवं समाज में व्याप्त कुप्रथाएँ

उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज में अनेक कुप्रथाएँ तथा कुरीतियाँ विद्यमान थीं और लोगों का धार्मिक तथा सामाजिक जीवन दयनीय हो गया था। सती प्रथा, बाल-विवाह, जात-पाँत की संकीर्णता, अस्पृश्यता और जाति-प्रथा की कठोरता के कारण ऐसा प्रतीत होने लगा था कि हिन्दू धर्म शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा। धर्म अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और परम्पराओं के बन्धनों में जकड़ा हुआ था। हिन्दू धर्म में उच्च दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्तों का नितान्त अभाव नहीं था, किन्तु धर्म के संचालकों को धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं रह गया था। ऐसे में भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं का अन्त करना अनिवार्य हो गया था। अतः भारतीय नवजागरण के परिणामस्वरूप समाज सुधारकों का ध्यान इन कुप्रथाओं की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाया।[6]

3.2 पाश्चात्य शासन प्रणाली और शिक्षा का प्रभाव

अपने आरम्भिक दिनों में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीयों के धार्मिक और सामाजिक जीवन के प्रति अहस्तक्षेप की नीति अपनाई और कोई सुधार कार्य नहीं किया। किन्तु बाद के समय में कम्पनी के कई अफ़सरों का ध्यान भारतीय समाज में व्याप्त अमानवीय प्रथाओं की ओर गया, और प्रगतिशील भारतीय बुद्धिजीवियों के सहयोग से सरकार को सामाजिक कुप्रथाओं का अन्त करने के लिए प्रयास करना पड़ा। जैसे लॉर्ड विलियम बेण्टिक ने सती-प्रथा, बाल-विवाह और दास-प्रथा का अन्त कर सामाजिक सुधार का मार्ग प्रशस्त किया।

वहीं अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार ने भी भारतीयों में नवीन चेतना को जन्म दिया। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीय पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान और मानवतावादी दृष्टिकोण से परिचित हुए। उन्हें पाश्चिमी देशों की उन्नति का रहस्य पता चला। उन्होंने धार्मिक संकीर्णता, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वासों का अन्त करने का प्रयास किया। उनके प्रयासों के फलस्वरूप भारतवासियों में नव-उत्साह एवं उदार विचार उत्पन्न हुए, जिसने राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया। भारतीय स्वस्थ और सुदृढ़ सामाजिक वातावरण के निर्माण के लिए लालायित हो उठे।

3.3 पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव

पाश्चिमी लोग भारत आगमन के समय अपने साथ पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति भी ले आए। इसका भारतीय जन-जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के कारण भारत का पश्चिमी जगत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। पाश्चात्य जगत से प्रेरणा लेकर भारतीयों ने प्रगतिशीलता की ओर क़दम बढ़ाया। भारतीय लोगों के विचारों की संकीर्णता, अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता आदि समाप्त होने लगे। शिक्षित वर्ग के मस्तिष्क में भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति आदर और गौरव की भावना जागृत हुई। लोगों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हुआ।

3.4 ईसाई धर्म प्रचारकों के कार्य

ब्रिटिश शासन की स्थापना के कुछ समय पश्चात् ईसाई मिशनरियों को भारत में ईसाई धर्म के प्रचार की अनुमति मिल गई। चूँकि ईसाई धर्म के सिद्धान्त बहुत ही सरल और सीधे हैं, अतः अशिक्षित भारतीय इस धर्म की ओर आकृष्ट हुए। ब्रिटिश सरकार ने ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन दिया। ग़रीब भारतीयों को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए सरकार ने कई प्रलोभन दिए। इस कारण भी ग़रीब व अशिक्षित भारतीय ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए।

वहीं भारतीय धर्म और दर्शन के सिद्धान्त अत्यन्त क्लिष्ट व सूक्ष्म थे, जो आम जनता की समझ से परे थे। अतः ईसाई धर्म का तीव्र गति से प्रचार-प्रसार होने लगा। इससे हिन्दू धर्म पर उसके पतन का ख़तरा मँडराने लगा। तत्पश्चात् ही भारतीय समाज सुधारकों ने भारतीय समाज, धर्म और संस्कृति को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक आन्दोलन चलाए और विभिन्न संस्थाओं का निर्माण किया।

3.5 वैज्ञानिक प्रगति का प्रभाव

उन्नीसवीं सदी का काल वैज्ञानिक प्रगति का भी काल था। इस समय सम्पूर्ण विश्व में वैज्ञानिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। वैज्ञानिक प्रगति ने मानव का मानव से सम्पर्क बढ़ा दिया। विज्ञान ने यातायात के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक प्रगति की। रेल, जहाज़, वायुयान, रेडियो, तार और बेतार आदि ने मानव समाज में सम्पर्क को बढ़ाया, जिसके फलस्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में लगने वाला समय कम हो गया। अब लोगों ने वैज्ञानिक चमत्कार को देखा और उन्हें देखने की नई दृष्टि मिली। परिणामस्वरूप अब जागरूक भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं और कुरीतियों को समाप्त करने के विषय में सोचने के लिए विवश हुआ।

3.6 1857 की क्रान्ति

नवजागरण और राष्ट्रीयता की भावना की जागृति के उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त 1857 की क्रान्ति की भी राष्ट्रीय चेतना के प्रादुर्भाव में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 1857 की क्रान्ति के पश्चात् दिनोंदिन राष्ट्रीयता की भावना बलवती होती गई और धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में नवचेतना आई।

इस समय दूसरी ओर हिन्दू धर्म अपने पतन की ओर तीव्र गति से बढ़ रहा था। हिन्दू धर्म को पतन से बचाने के लिए इसकी कमियों को दूर करना अनिवार्य हो गया था। अतः हमारे देश में समाज सुधारकों का प्रादुर्भाव हुआ। इन समाज सुधारकों ने सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों का अन्त करने का प्रयास किया और भारतीय जीवन में नई चेतना आई।

4. बंगाल का सुधार आन्दोलन: राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज

धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों में सबसे अग्रणी नाम राजा राममोहन राय का है। वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक और राजनीतिक नवजागरण के लिए कठिन परिश्रम किया। राष्ट्रीय नवजागरण के पहले अधिवक्ता राजा राममोहन राय थे। धार्मिक और सामाजिक नेता के रूप में उनका व्यक्तित्व अत्यन्त विशाल और असाधारण था। अपनी विवेचनात्मक बौद्धिकता तथा सामाजिक हेतुवाद के कारण वे राष्ट्रीय जागरण के पथ-प्रदर्शक बन गए।

इस समय भारतीय समाज में जाति और परम्परा जड़ता थी। हिन्दू धर्म अन्धविश्वासों के दलदल में धँसा था और इसका लाभ अज्ञानी लोग और भ्रष्ट पुरोहित उठाते थे। राजा राममोहन राय पाश्चात्य दार्शनिक विचारों का सम्मान करते थे, किन्तु वे इस बात से भी भलीभाँति परिचित थे कि केवल पाश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों से भारतीय समाज का उत्थान नहीं किया जा सकता है।

अतः राजा राममोहन राय ने कलकत्ता में 1815 में आत्मीय सभा की स्थापना की, जिसने आगे चलकर 1828 में ब्रह्म समाज का रूप ले लिया। यह शिक्षित मध्यमवर्गीय बंगालियों का प्रमुख धार्मिक आन्दोलन बनकर उभरा, जो एकेश्वरवाद के मूल सिद्धान्त पर आधारित था।

राजा राममोहन राय ने सभी प्रकार के सामाजिक अत्याचारों का विरोध किया। इन सामाजिक बुराइयों में सती-प्रथा उनको सबसे बड़ी बुराई प्रतीत होती थी। अतएव उन्होंने इस सामाजिक बुराई को जड़ से उखाड़ फेंकने का निश्चय किया। इस अमानवीय प्रथा के विरुद्ध उन्होंने लगातार आन्दोलन किया, और यह उनके निरन्तर आन्दोलन का ही परिणाम था कि 1829 में लॉर्ड विलियम बेण्टिक ने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। हालाँकि कुछ लोगों द्वारा इस नियम का विरोध किया गया, किन्तु अन्ततः राजा राममोहन राय का प्रयास सफल रहा।

राजा राममोहन राय एक धर्म सुधारक भी थे। वे सभी धर्मों की मौलिकता में विश्वास रखते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि भारतीय लोकधर्म की किसी प्रकार की निन्दा की जाए। इसीलिए जब उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की तो उन्होंने पूजा का तरीका ऐसा रखा जिसमें सभी मत वाले एकता के सूत्र में बँध सकें। ब्रह्म समाज के नियम सभी धर्मों के प्रति उदार और सहानुभूतिशील थे। किन्तु उसने मूर्ति-पूजा का बहिष्कार किया, अवतार, तीर्थ और श्राद्ध को नहीं माना, और लोगों का ध्यान निराकार एक ब्रह्म की ओर आकर्षित किया। राजा राममोहन राय का मानना था कि धर्मों में जो कुछ सत्य और पवित्र है उसे अपना लिया जाए तथा जो कृत्रिम और ढोंग है उसे त्याग दिया जाए।

राजा राममोहन राय आधुनिक शिक्षा के प्रचारकों में अग्रणी थे। उनका मानना था कि आधुनिक शिक्षा के माध्यम से ही देश में नव-चेतना और नवीन आधुनिक विचारों का आगमन हो सकता है। वे चाहते थे कि भारत में पाश्चात्य विद्या और ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार हो। यही कारण है कि जो लोग भारत में अंग्रेज़ी भाषा को चलाना चाहते थे, उन्हें भी राममोहन राय ने अपना समर्थन दिया। इसी क्रम में डेविड हेयर ने 1817 में कलकत्ता में प्रसिद्ध हिन्दू कॉलेज की स्थापना की, जो उन दिनों सर्वाधिक आधुनिक संस्था थी। हिन्दू कॉलेज की स्थापना और उसकी अन्य शिक्षा-सम्बन्धी परियोजनाओं के लिए राजा राममोहन राय ने डेविड हेयर का समर्थन किया। 1825 में उन्होंने वेदान्त कॉलेज की स्थापना की, जिसमें भारतीय विद्या और पाश्चात्य सामाजिक तथा भौतिक विज्ञान की पढ़ाई की सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाती थीं।

इसके अतिरिक्त राममोहन राय ने बांग्ला को बौद्धिक सम्पर्क का माध्यम बनाने के लिए बांग्ला व्याकरण पर एक पुस्तक लिखी। उन्होंने बांग्ला के प्रति एकनिष्ठता के लिए कई पुस्तिकाओं और पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। राष्ट्रीय चेतना के उदय की पहली झलक हमें राजा राममोहन राय के प्रतिनिधित्व में दिखाई पड़ती है।

राजा राममोहन राय का विश्वास था कि भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों और कुप्रथाओं को जड़मूल से उखाड़ फेंकने, तथा एकेश्वरवाद और वैदिक सन्देश देकर, वे अलग-अलग समूहों में बँटे भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँध सकते हैं। उन्होंने जाति-प्रथा का पुरज़ोर विरोध किया। उन दिनों जाति-कट्टरता अपने चरम पर थी। यह जाति-कट्टरता भारतीयों में एकता के अभाव का मुख्य स्रोत थी। उनका मानना था कि जाति-कट्टरता एक ऐसी कुरीति है जिसने भारतीयों को विभाजित कर उन्हें देशभक्ति की भावना से वंचित रखा है।

राजा राममोहन राय समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता के समर्थक थे। उन्हें भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। उन्होंने जनता के बीच वैज्ञानिक, सामाजिक और राजनीतिक नव-चेतना के विकास के लिए बांग्ला, फ़ारसी, हिन्दी और अंग्रेज़ी में पत्र-पत्रिकाएँ निकालीं। उन्होंने स्वयं एक बांग्ला पत्रिका *संवाद कौमुदी* का प्रकाशन 1821 में किया,[7] और आगे चलकर समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन किया।[8]

ब्रह्म समाज आन्दोलन से जुड़े अन्य नेता भी समाचार-पत्रों की शक्ति से परिचित थे। उन्होंने भलीभाँति अनुभव कर लिया था कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना को सक्रिय बनाए रखने के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता अनिवार्य है। अतः हिन्दू कॉलेज, कलकत्ता के छात्रों रामगोपाल घोष और ताराचन्द चक्रवर्ती आदि ने इस दिशा में जनमत तैयार करने में अपना योगदान दिया। इसके अतिरिक्त राजा राममोहन राय ने न्यायिक क्षेत्र में भारतीयों के साथ होने वाले भेदभाव के विरुद्ध भी लम्बी लड़ाई लड़ी।

राजा राममोहन राय के प्रभावशाली नेतृत्व ने जिस आन्दोलन का सूत्रपात किया, उसका अन्त उनकी मृत्यु के बाद भी नहीं हुआ। आगे चलकर उनके अधूरे कार्य को पूरा करने का कार्य द्वारकानाथ टैगोर और केशवचन्द्र सेन ने किया। केशवचन्द्र सेन सामाजिक स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। उनका मानना था कि लोगों की धार्मिक भावना को सजीव और सचेत किया जाए। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि राष्ट्र के निर्माण के लिए महान प्रयास और निरन्तर तैयारी की आवश्यकता रहती है। लेकिन दुर्भाग्यवश केशवचन्द्र सेन और अन्य ब्रह्म समाजवादियों में मतभेद हो गया, जिसके परिणामस्वरूप केशवचन्द्र सेन ने नवीन ब्रह्म समाज की स्थापना की और समाज सुधार के कार्यों को आगे बढ़ाया। साधारण ब्रह्म समाज के स्तम्भों में द्वारकानाथ गांगुली और राजनारायण बसु प्रमुख थे।

राष्ट्रवादी भावना के निर्माण में ब्रह्म समाज ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। ब्रह्म समाज ने भारतीयों को उनके प्राचीन गौरव के प्रति जागरूक किया। अपने धर्म और सभ्यता में विश्वास के जागरण ने जन-साधारण को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधा। केशवचन्द्र सेन ने पहली बार भारतीय आधार पर समाज का निर्माण करने का प्रयत्न किया, जिससे भारत की एकता का विचार दृढ़ हुआ, और उन्हीं से प्रेरणा लेकर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने राजनीतिक आन्दोलन को सम्पूर्ण भारत में प्रसारित करने का प्रयास किया।

अतः यह निश्चित है कि ब्रह्म समाज ने सभी प्रकार के सुधारों के माध्यम से भारतीय जनमानस को सशक्त बनाया। ब्रह्म समाज ने पहली बार समाज की आवश्यकताओं और समस्याओं को भारतीयों के समक्ष रखा और बौद्धिक जागृति की ओर क़दम बढ़ाया। अब भारतीय व्यक्तित्व निखर चुका था, उसमें पाश्चात्य सभ्यता और धर्म से टक्कर लेने का आत्मविश्वास आ चुका था। ब्रह्म समाज ने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था जिससे आगे चलकर आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाएँ साहसपूर्ण क़दम उठा सकें।

5. रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द

उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों में स्वामी रामकृष्ण परमहंस का नाम भी उल्लेखनीय है। इनका जन्म 1834 में कलकत्ता के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। रामकृष्ण परमहंस बाद में कलकत्ता के निकट दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के पुजारी बने। रामकृष्ण पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी उनका आध्यात्मिक जीवन उच्च कोटि का था। उन्होंने सभी धर्मों के मूल भावों को गहराई से समझा और पाया कि प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का अंश है। मानवता की सेवा और विश्व कल्याण उनका मुख्य सिद्धान्त था। वे मौखिक रूप से सरल भाषा में उपदेश दिया करते थे, जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही उनके बहुत से शिष्य हो गए। इन शिष्यों में सबसे प्रमुख कलकत्ता विश्वविद्यालय के नरेन्द्र दत्त थे।

भारतीय आध्यात्मिक-सांस्कृतिक परम्परा का प्रतीक रामकृष्ण मिशन आन्दोलन है, जिसने धर्म और दर्शन के क्षेत्र में ऐसा जागरण किया जिसके परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई। रामकृष्ण मिशन के मुख्य सिद्धान्त कुछ इस प्रकार थे।

पहला, सभी धर्म मूलतः अच्छे हैं। सभी धर्मों का उद्देश्य मानव कल्याण है, अतः प्रत्येक को अपने धर्म में पूर्ण आस्था रखनी चाहिए। दूसरा, उन्होंने बताया कि ईश्वर अजन्मा, अमर और अव्यक्त है; वह संसार के प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है, मानव आत्मा ईश्वरीय है, और मूर्ति-पूजा के द्वारा ईश्वर के दर्शन सरल हैं। तीसरा, भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ और अति प्राचीन है जो आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है; प्रत्येक भारतीय को अपने धर्म और संस्कृति को पाश्चात्य प्रभाव से बचाने का प्रयास करना चाहिए।

1886 में स्वामी रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु हो गई। उन्होंने न कोई धर्म चलाया, न ही किसी मठ की स्थापना की। उनके द्वारा संसार को सबसे बड़ी देन आध्यात्मवाद है। उन्होंने सरल उपदेशों और व्यावहारिक उदाहरणों के माध्यम से वेदों और उपनिषदों के ज्ञान को साधारण व्यक्ति के निकट पहुँचा दिया। परिणामस्वरूप हिन्दुओं में अपने प्राचीन ज्ञान के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न हुआ। उनका कहना था कि सभी धर्म ईश्वर-प्राप्ति के विभिन्न मार्ग हैं और किसी भी मार्ग का सही अनुसरण कर ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। उन्होंने कहा कि ईश्वर को जिस रूप व नाम से तुम पुकारोगे, उसी नाम और स्वरूप में तुम उसे देखोगे। उन्होंने मानव कल्याण को परम धर्म बताया। इस प्रकार स्वामी रामकृष्ण ने अपने व्यवहार और कर्म से उपनिषदों और वेदों के मूल विचारों को स्पष्ट कर हिन्दू पुनरुद्धार आन्दोलन को उसके शिखर पर पहुँचा दिया।

रामकृष्ण के मानव-कल्याण के विचारों को आगे संसार में फैलाने का कार्य उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द द्वारा किया गया, जिन्हें नरेन्द्र दत्त के नाम से भी जाना जाता है। 1893 में स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं के प्रयासों से अमेरिका के शिकागो में आयोजित सर्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया। उनके भाषण ने वहाँ सभी को प्रभावित कर दिया। वहाँ उन्होंने वेदान्त सभा की स्थापना की। वहीं से वे पेरिस और लन्दन गए और वहाँ धर्म प्रचार किया।

एक बार पुनः वे अमेरिका गए। वहाँ से वापस आकर उन्होंने भारत की निर्धनता, जाति-प्रथा, कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास आदि के प्रति आन्दोलन चलाया। उनका यह विश्वास था कि भारतीयों में अभूतपूर्व शक्ति है, केवल उसे जागृत करने की आवश्यकता है। अतः उन्होंने 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और 1899 ई. में अपने प्राचीन मठ को बेलूर में स्थापित किया।[9] 1899 में एक बार पुनः अमेरिका गए और सम्पूर्ण यूरोप का भ्रमण कर विभिन्न स्थानों पर वेदान्त सभाओं की स्थापना की। अन्ततः 1902 ई. में उनतालीस वर्ष की अल्प आयु में ही एक महान व्यक्तित्व का अन्त हो गया।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय धर्म और आध्यात्मवाद को सजीव बना दिया था। हिन्दू आध्यात्मवाद के माध्यम से उन्होंने हिन्दू धर्म, समाज और राष्ट्र के निर्माण में जो सहयोग दिया, वह चिरस्थायी है। उन्होंने सभी धर्मों की समानता और मनुष्य मात्र की सेवा का जो सन्देश पाश्चिमी राष्ट्रों को दिया, वह अनुकरणीय है। अपने अनवरत प्रयासों के माध्यम से उन्होंने हिन्दू धर्म के आध्यात्मवाद को फिर से जागृत किया। स्वामी विवेकानन्द ने अपने धर्म और सभ्यता के प्राचीन गौरव की भावना जन-साधारण में जगाकर उन्हें एकता के सूत्र में पिरोया। अब देश में राष्ट्रीय भावना का जागरण हुआ।

स्वामी विवेकानन्द ने न केवल हिन्दू धर्म को नई दिशा व प्रेरणा दी, बल्कि विश्व में हिन्दू धर्म और आध्यात्मवाद के महत्त्व को बढ़ा दिया था। उनका कहना था कि धर्म न पुस्तकों में है, न वैदिक क्रियाओं में और न ही तर्कों में; धर्म वास्तव में आत्मज्ञान में है। उन्होंने धर्म को प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक और सहायक बताया। उन्होंने कहा कि एक राष्ट्र की प्रगति का मापदण्ड भी उसकी धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रगति ही है।

स्वामी जी सभी धर्मों की एकता में विश्वास करते थे और उन्होंने सदैव धार्मिक उदारता, समानता और सहयोग पर बल दिया। उन्होंने कहा, "सहायता करो, लड़ो नहीं; एक-दूसरे से ग्रहण करो, विनाश नहीं; मेल और शान्ति, विरोध नहीं।" स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, "तुम सभी व्यक्तियों की विचारधारा को एक नहीं कर सकते, यह सत्य है और मैं इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ। विचारों के अन्तर और संघर्ष से ही नवीन विचार जन्म लेते हैं।"

उन्होंने शिक्षा, स्त्री-पुनरुद्धार और आर्थिक प्रगति के लिए भी कार्य किया। उन्होंने कहा था, "जब तक करोड़ों व्यक्ति भूखे और अज्ञानी हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को देशद्रोही मानता हूँ जो उन्हीं के ख़र्चे पर शिक्षा प्राप्त करता है और उनकी परवाह बिल्कुल नहीं करता।" इस प्रकार समाज-निर्माण और सेवा उनका परम धर्म था। स्वामी विवेकानन्द ने लगभग डेढ़ सौ वर्षों से चल रहे ईसाई धर्म के प्रचार पर रोक लगा दी। अतः भारतीय धर्म और संस्कृति को समाप्त करने वाले ईसाई धर्म एवं यूरोपीय बुद्धिवाद जैसे तूफ़ान स्वामी विवेकानन्द से टकराकर लौट गए। राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ, जिसने भारतीयों को स्वतन्त्रता के लिए जागरूक किया।

6. तरुण बंगाल और हेनरी विवियन डेरोज़ियो

तरुण बंगाल की स्थापना हेनरी विवियन डेरोज़ियो के द्वारा 1826 से 1831 के बीच हुई थी। आधुनिकीकरण के आन्दोलन को आगे बढ़ाने में कलकत्ता के हिन्दू कॉलेज की भूमिका अग्रणी रही। 1826 में सत्रह वर्षीय युवा हेनरी विवियन डेरोज़ियो हिन्दू कॉलेज में अध्यापक बने। वे छात्रों को स्वतन्त्रता से सोचने और परम्परागत मान्यताओं पर पुनर्विचार करने की सलाह देते थे। डेरोज़ियो ने छात्रों को साहित्य, दर्शन तथा विज्ञान के बारे में विचार-विमर्श करने के लिए एक संगठन बनाया। वे शीघ्र ही छात्रों के बीच लोकप्रिय बन गए। डेरोज़ियो का संगठन तरुण बंगाल था, जो इन्हीं छात्रों से मिलकर बना था।

इन छात्रों ने सामाजिक और धार्मिक कुप्रथाओं की अवहेलना की और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और स्त्री-शिक्षा की माँग की। इन्होंने समाज की तमाम बुराइयों को समाप्त करने की मुहिम चलाई। डेरोज़ियो पर यह आरोप लगाकर कि उनके विचारों से युवक बिगड़ रहे हैं, उन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया। 1831 में उनकी मृत्यु हो गई। किन्तु उनके विचारों ने एक नवीन चेतना को जन्म दिया, और उनकी मृत्यु के बाद भी विभिन्न लेखों के माध्यम से उनके विचारों का प्रचार होता रहा।

7. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

महान समाज सुधारकों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम हमेशा स्मरणीय रहेगा। 1820 में जन्मे विद्यासागर आगे चलकर कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल बने। निःस्वार्थ सेवा को उन्होंने अपना धर्म बनाया। उन्होंने दलितों के उत्थान और शिक्षा के प्रचार के लिए अथक प्रयास किए। वे शीघ्र ही लोकप्रिय हो गए।

उन्होंने संस्कृत कॉलेज में पाश्चात्य विचारों पर आधारित शिक्षा प्रारम्भ की और निम्न जातियों के विद्यार्थियों के लिए भी कॉलेज के द्वार खोल दिए। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से बंगाल साहित्य के विकास में अहम भूमिका निभाई। अपने लेखों के माध्यम से समाज सुधार का कार्य किया। स्त्री-उत्थान की दिशा में कार्य करते हुए उन्होंने विधवा-पुनर्विवाह क़ानून बनवाने के लिए अनवरत प्रयास किया। इन्हीं के प्रयासों के फलस्वरूप 1856 में विधवा-पुनर्विवाह क़ानून पास हुआ। उन्होंने लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले। अतः उन्होंने निश्चय ही अपने विचारों और कार्यों के माध्यम से भारतीय समाज को सशक्त किया।

8. पश्चिम भारत के सुधार आन्दोलन

8.1 प्रार्थना समाज

बंगाल में होने वाले सुधार आन्दोलन बंगाल तक ही सीमित नहीं रह गए थे। इन आन्दोलनों ने पश्चिम भारत को भी प्रभावित किया। अब वहाँ भी सुधार आन्दोलन शुरू हो गए। 1867 में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई।[10] इसके प्रमुख नेता महादेव गोविन्द रानडे और रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर थे।

प्रार्थना समाज ने बंगाल के ब्रह्म आन्दोलन से एक अन्तर बनाए रखा था। यह अन्तर यह था कि बंगाल के ब्रह्मवादियों के अपेक्षाकृत अधिक टकरावादी रवैयों के विपरीत उनका दृष्टिकोण सावधानी भरा था। रानडे ने कहा कि बम्बई प्रेसीडेंसी में आन्दोलन का प्रमुख तत्त्व यह लक्ष्य था कि "अतीत से नाता न तोड़ा जाए और हमारे समाज के सारे सम्बन्ध भंग न हों।" वे सुधारों को सामाजिक व्यवस्था को तोड़ने वाली उथल-पुथल के रूप में नहीं, बल्कि क्रमिक ढंग से लाना चाहते थे। प्रार्थना समाज को इसी नरमवादी दृष्टिकोण ने समाज में लोकप्रिय बनाया। उसकी शाखाएँ पूना, सूरत, अहमदाबाद, कराची, किरकी, कोल्हापुर और सतारा में स्थापित हुईं।

प्रार्थना समाज ने सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के विरुद्ध सुधार आन्दोलन चलाया। उन्होंने जाति-प्रथा और अस्पृश्यता की निन्दा की, स्त्रियों के उद्धार के लिए प्रयास किए। रानडे ने देश भर में सामाजिक सुधार के कार्य को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से 1887 में 'भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन' की स्थापना की। उन्होंने प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर सामाजिक समस्या पर भी सम्मेलन का आयोजन कराया। उनका मानना था कि सामाजिक सुधारों के बिना आर्थिक और राजनीतिक चेतना का विकास सम्भव नहीं है। वे साम्प्रदायिक एकता के समर्थक थे, क्योंकि साम्प्रदायिक एकता के बिना राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं थी।

8.2 गोपाल हरि देशमुख और ज्योतिबा फुले

इन सुधारकों के अतिरिक्त गोपाल हरि देशमुख और ज्योतिबा फुले भी पश्चिम भारत के महान सुधारक थे। गोपाल हरि देशमुख 'लोकहितवादी' सामाजिक सुधार के कई संगठनों से जुड़े थे। इन्होंने जाति-प्रथा का विरोध किया और नारी उत्थान के लिए कार्य किए।

फुले ने 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की और दलितों को एकजुट कर सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना के जागरण का कार्य किया। 1848 में महात्मा फुले ने दलित लड़कियों को शिक्षित करने के लिए स्कूल खोले। अपने कार्यों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक एकजुटता को बढ़ाया।

9. आर्य समाज

सामाजिक और धार्मिक सुधार के होड़ में सबसे प्रभावशाली आन्दोलन की शुरुआत स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा की गई। आर्य समाज ने वैदिक स्वराज्य का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने स्वराज्य के विभिन्न साधनों का क्रियान्वयन कर राष्ट्रवादिता की सच्ची अभिव्यक्ति प्रस्तुत की। राष्ट्रीय शिक्षण, परम्परा, गुरुकुल प्रणाली, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन, स्वदेशी प्रचार, बहिष्कार आन्दोलन, दलितोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, तथा वर्ण-व्यवस्था एवं जाति-प्रथा निषेध जैसे कार्यक्रम चलाए, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रसार जन-साधारण तक हो सके। आर्य समाज का आन्दोलन स्वधर्म, स्वदेश, स्वभाषा और स्वराज्य के चार स्तम्भों पर आधारित रहा है। आर्य समाज राष्ट्र की एकता के साथ-साथ समूची मानवता के कल्याण पर बल देता है।

स्वाधीनता और स्वराज्य के अधिवक्ता स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। दयानन्द ने उस समय ही आदर्श स्वराज्य का स्वरूप प्रस्तुत कर दिया था। महर्षि *सत्यार्थ प्रकाश* के आठवें अध्याय में लिखते हैं कि "आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का कष्ट भोगना पड़ता है। स्वदेशी राजा सर्वोत्तम व सर्वोपरि है।"[11] इस स्वराज्य की प्राप्ति के लिए आर्य समाज का कार्य सभी सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों की तुलना में अधिक सफल रहा। आज भी भारत के गाँव-गाँव और नगर-नगर में आर्य समाज और उसकी शिक्षा संस्थाएँ मौजूद हैं।

आर्य समाज ने धार्मिक क्षेत्र में सुधार करते हुए मूर्ति-पूजा, कर्मकाण्ड, बलि-प्रथा, स्वर्ग और नरक की कल्पना तथा भाग्य में विश्वास का विरोध किया। उन्होंने "वेदों की ओर लौटो" और "आर्यावर्त आर्यों के लिए" का नारा दिया। उन्होंने वेदों की श्रेष्ठता का दावा किया, तथा मन्त्र पाठ, हवन और कर्मयज्ञ आदि का तार्किक महत्त्व बताया। आर्य समाज ने वेदों की व्याख्या इस प्रकार की जिससे वेद अनेक वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्तों के स्रोत माने जा सकते हैं। उन्होंने कहा कि हिन्दू अपने सत्य ज्ञान को भूल गए हैं; संसार का कोई भी ज्ञान नहीं जो वेदों में न पाया जाए।

सामाजिक क्षेत्र में आर्य समाज द्वारा किए गए सुधार अत्यन्त सफल हुए। उसने बाल-विवाह, बहु-विवाह, जाति-प्रथा और पर्दा-प्रथा आदि सभी सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। अछूतों के उद्धार के लिए अन्तर्जातीय खान-पान और विवाहों को प्रोत्साहन दिया, और सबसे महत्त्वपूर्ण शुद्धि आन्दोलन चलाया, ताकि कोई भी व्यक्ति ईसाई व इस्लाम धर्म छोड़कर पुनः हिन्दू धर्म स्वीकार कर सके।

आर्य समाज ने सम्पूर्ण भारत में, मुख्यतया उत्तर भारत में, अनेक स्थानों पर गुरुकुल, कन्या गुरुकुल और डी.ए.वी. जैसी शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की। दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया। वे ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया। उनके विचारों से प्रेरणा लेकर बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और गोपालकृष्ण गोखले ने हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया।

10. दक्षिण भारत के सुधार आन्दोलन

ब्रह्म समाज ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में जागरूकता पैदा की। ब्रह्म समाज का प्रभाव दक्षिण भारत के सुधारकों पर भी पड़ा। 1864 में मद्रास में 'वेद समाज' की स्थापना हुई। ब्रह्म समाज की भाँति जात-पाँत और छुआछूत आदि कुप्रथाओं का विरोध किया। स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह का समर्थन किया। इसने कर्मकाण्डों और अनुष्ठानों की निन्दा की और एकेश्वरवाद पर ज़ोर दिया।

चेम्बेटी श्रीधरलु नायडू वेद समाज के प्रमुख नेता थे। इन्होंने ब्रह्म समाज की किताबों का अनुवाद तमिल और तेलुगु में कर दक्षिण भारतीयों में नवीन चेतना का संचार किया।

दक्षिण भारत के अन्य समाज सुधारकों में कन्दुकूरी वीरेशलिंगम् और नारायण गुरु जैसे महान सुधारक भी थे। 1876 में वीरेशलिंगम् ने एक तेलुगु पत्रिका शुरू की जो पूर्णतः सामाजिक सुधार के लिए समर्पित थी। नारायण गुरु ने धर्म और जाति पर आधारित भेदों को व्यर्थ बताया और एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

11. थियोसोफिकल सोसाइटी

थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना 1875 ई. में मैडम हेलेना पेत्रोव्ना ब्लावत्स्की और एच. एस. ऑल्कॉट ने की। 1882 में मद्रास के निकट अड्यार नामक स्थान पर इसका अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय स्थापित किया गया।[12] इस सोसाइटी के नियमों के अनुसार केवल धर्म ही राष्ट्रीयता को प्रेरित कर सकता है।

1893 में श्रीमती एनी बेसेण्ट भारत आईं और सामाजिक सुधार के कार्यों में लग गईं। उन्होंने हिन्दू धर्म अपना लिया और धार्मिक पुनरुत्थान तथा शिक्षा के प्रचार में अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। उन्होंने 1898 में बनारस में सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की, जिसे बाद में मदन मोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया।

थियोसोफिकल आन्दोलन ने हिन्दू नवजागरण को नई स्फूर्ति प्रदान की। इसके अतिरिक्त उन्होंने बाल-विवाह, बहु-विवाह, जात-पाँत और अस्पृश्यता जैसी बुराइयों का विरोध किया और भारतीय समाज को सशक्त बनाने का हरसम्भव प्रयास किया। इतना ही नहीं, श्रीमती बेसेण्ट आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की कर्णधार बनीं। उन्होंने होमरूल आन्दोलन चलाया, जेल गईं और इण्डियन नेशनल कांग्रेस की अध्यक्ष भी बनीं।

12. अन्य धर्मों के सुधार आन्दोलन

उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार आन्दोलनों ने मुस्लिम, पारसी और सिख समाज में भी सुधार को प्रोत्साहित किया। मुस्लिम समाज में सुधार करने का प्रथम प्रयास सर सैयद अहमद ख़ाँ ने उठाया। उनके द्वारा चलाया गया आन्दोलन अलीगढ़ आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है। उनका विश्वास था कि पाश्चात्य शिक्षा, राजनीतिक और वैज्ञानिक विचारों को ग्रहण कर मुस्लिम समाज का कल्याण हो सकता है। अतः उन्होंने 1875 में मुहम्मडन ऐंग्लो ओरिएण्टल कॉलेज की स्थापना की और मुस्लिम समाज को जागृत करने का प्रयास किया।

वहीं पारसी धर्म सुधार के लिए दादाभाई नौरोजी और नौरोजी फरदूनजी आदि महापुरुष प्रमुख हैं। इन्होंने ज़रथुस्त्र धर्म के पुनर्निर्माण और पारसियों की सामाजिक अवस्था सुधारने के लिए 'रहनुमाई मज़दयासनी सभा' या धार्मिक सुधार संघ की स्थापना की। इन प्रयासों ने भी अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाया।

13. उपसंहार

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार नवजागरण-कालीन सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रवाद के उदय की पृष्ठभूमि तैयार की। राष्ट्रीय भावना के जागरण में पाश्चात्य प्रशासनिक और शैक्षणिक प्रणाली ने भी अहम भूमिका निभाई। पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से ही मध्यम वर्गीय भारतीय बुद्धिजीवी पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान, स्वतन्त्रता और समानता के मूल्यों से परिचित हुआ। परिणामस्वरूप अब वे भी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गए।

1857 की क्रान्ति के पूर्व राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महान समाज सुधारकों ने भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं को दूर कर समाज को सशक्त बनाने का प्रयास किया। वहीं दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर सम्पूर्ण भारत में स्वराज्य, स्वदेश, स्वधर्म और स्वभाषा का सन्देश दिया। वे स्वराज्य शब्द का प्रयोग करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। निश्चय ही उन्होंने देश में राष्ट्रवाद की भावना को जगाया। उन्होंने कहा कि भारत भारतीयों के लिए है।

इसके अतिरिक्त रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज, परमहंस मण्डली, दक्षिण भारत का वेद समाज जैसी संस्थाओं और वीरेशलिंगम् व नारायण गुरु जैसे सुधारकों के प्रयासों से भारतीयों में नवचेतना का प्रादुर्भाव हुआ। इनके अतिरिक्त मुस्लिम, पारसी और सिख समाज में भी सुधार आन्दोलन हुए।

अतः इन सभी सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने सम्मिलित रूप से सम्पूर्ण भारत में नव-चेतना को जन्म दिया, जिसकी परिणति आगे चलकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के रूप में हुई।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. विपिन चन्द्र, *आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, संस्करण 2019, पृष्ठ 115।
2. कार्मेन्दु शिशिर, *भारतीय नवजागरण और समकालीन सन्दर्भ*, नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014।
3. डॉ. विपिन बिहारी सिन्हा, *आधुनिक भारत का इतिहास*, ज्ञानदा प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ 331।

4. सुमित सरकार, *आधुनिक भारत*, राजकमल प्रकाशन, 11वीं आवृत्ति, संस्करण 2009, पृष्ठ 93।

5. सत्यकेतु विद्यालंकार, *भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास*, श्री सरस्वती सदन, संस्करण 2014।

6. डॉ. दीनानाथ वर्मा, *आधुनिक भारत (1740-1950 ई.)*, ज्ञानदा प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ 240।

7. शेखर बन्द्योपाध्याय, *प्लासी से विभाजन तक: आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, संस्करण 2009।

8. राजा राममोहन राय के प्रेस-स्वातन्त्र्य सम्बन्धी आन्दोलन का वर्ष स्रोतों में एकसमान नहीं है। प्रचलित विवरण 1823 के प्रेस अध्यादेश के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत याचिका का उल्लेख करते हैं, जबकि कुछ विवरण 1824 के अध्यादेश का। इस आलेख में कोई एक वर्ष निश्चित रूप से नहीं दिया गया है। तुलना के लिए देखें: रामचन्द्र गुहा, 'Why Ram Mohun Roy's colonial-era petition for press freedom is still relevant', *Scroll.in*, https://scroll.in/article/965214 (पहुँच तिथि 21 अगस्त 2026)।

9. डॉ. कर्ण सिंह, *प्रॉफेट ऑफ इण्डियन नेशनलिज़्म*, भारतीय विद्या भवन, मुम्बई, चतुर्थ संस्करण, 2000; तथा *दि लाइफ़ ऑफ विवेकानन्द*, अद्वैत आश्रम, संस्करण 2000।

10. प्रार्थना समाज की स्थापना 1867 में आत्माराम पाण्डुरंग द्वारा हुई। देखें कौलेश्वर राय, *आधुनिक भारत (1757-1950)*, किताब महल, संशोधित संस्करण, 2008।

11. स्वामी दयानन्द सरस्वती, *सत्यार्थ प्रकाश*, अष्टम समुल्लास, वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम अजमेर, 39वीं आवृत्ति, संस्करण 2005। आर्य समाज के संगठनात्मक इतिहास के लिए देखें भवानी लाल भारती, प्रो. वेदलंकार तथा डॉ. सत्यकेतु, *आर्य समाज का इतिहास*, खण्ड 5, श्री सरस्वती सदन, संस्करण 2016।

12. थियोसोफिकल सोसाइटी का अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय 19 दिसम्बर 1882 को अड्यार में स्थापित हुआ। देखें 'Adyar International Headquarters', *Theosophy World Encyclopedia*, https://www.theosophy.world/encyclopedia/adyar-international-headquarters (पहुँच तिथि 21 अगस्त 2026)।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. कर्ण सिंह, *प्रॉफेट ऑफ इण्डियन नेशनलिज़्म*, भारतीय विद्या भवन, मुम्बई, चतुर्थ संस्करण, 2000।
- *दि लाइफ़ ऑफ विवेकानन्द*, अद्वैत आश्रम, संस्करण 2000।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती, *सत्यार्थ प्रकाश*, वैदिक पुस्तकालय, दयानन्द आश्रम अजमेर, 39वीं आवृत्ति, संस्करण 2005।
- सुमित सरकार, *आधुनिक भारत*, राजकमल प्रकाशन, 11वीं आवृत्ति, संस्करण 2009, पृष्ठ 93।
- कार्मेन्दु शिशिर, *भारतीय नवजागरण और समकालीन सन्दर्भ*, नई किताब, प्रथम संस्करण, 2014।
- डॉ. दीनानाथ वर्मा, *आधुनिक भारत (1740-1950 ई.)*, ज्ञानदा प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ 240।
- शेखर बन्द्योपाध्याय, *प्लासी से विभाजन तक: आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, संस्करण 2009।
- कौलेश्वर राय, *आधुनिक भारत (1757-1950)*, किताब महल, संशोधित संस्करण, 2008।
- इन्द्रनाथ चौधरी, *भारतीय नवजागरण, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी*।
- विपिन चन्द्र, *आधुनिक भारत का इतिहास*, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, संस्करण 2019, पृष्ठ 115, 215।
- डॉ. विपिन बिहारी सिन्हा, *आधुनिक भारत का इतिहास*, ज्ञानदा प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ 331-333।
- भवानी लाल भारती, प्रो. वेदलंकार, डॉ. सत्यकेतु, *आर्य समाज का इतिहास*, खण्ड 5, श्री सरस्वती सदन, संस्करण 2016।
- सत्यकेतु विद्यालंकार, *भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास*, श्री सरस्वती सदन, संस्करण 2014।
- वी. डी. महाजन, *मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री*, एस. चन्द, संस्करण 2020, पृष्ठ 662-675।
- के. सी. व्यास, *द सोशल रेनेसाँ इन इण्डिया*, क्रिएटिव मीडिया पार्टनर, संस्करण 2021।

Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.